डॉ. प्रभाकर माचवे के काव्य में प्रगतिवाद

प्रा.डॉ.शेख शरफोद्दीन फक्रोद्दीन
हिंदी विभाग,
कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
बदनापुर, जि. जालना

डॉ.प्रभाकर माचवे के काव्य रचना का युग अत्यंत विस्तृत था । उनके काव्य में प्रारंभ से ही मानव विशिष्टता के लिए आग्रह रहा है। वे बहुजन प्रतिष्ठा के लिए कटिबध्द हुए थे, किन्तु उनकी कटिबध्दता का कारण विराट मानवीय करुणा ही थी। माचवे ने यथार्थ की नवीन भूमियों को अपने काव्य में उपस्थित किया जो युग चेतना के संदर्भ में आधुनिक परिवेश लेकर उपस्थित हुए थे । मानवतावाद की चर्चा करते हुए आ. नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है, "मानवतावादी लेखक अपनी अपार सहानुभूति से पददलित मानव की विशेष निहित शक्तियों और संभावनाओं का आलेख प्रस्तुत करता है ।"[१]

माचवे के काव्य का केन्द्रबिंदु मनुष्य है। वे मनुष्य को समस्त बाधाओं से मुक्त करने का प्रयत्न करते है इस मुक्ति का वर्णन करते हुए वे कहते है -

'मुक्ति तभी जब हो विचार भी मुक्त, मुक्ति हो वाणी की,

मुक्ति दिवस हम तभी मनायें, मिले मुक्ति हर प्राणी की।"[२]

कवि एक ऐसा समाज चाहते थे जहाँ हर मनुष्य विचार तथा वाणी से मुक्त हो। उसके विचारों तथा वाणी पर किसी का नियंत्रण न हो। उसके विचारों पर, वाणी पर किसी का नियंत्रण न रहे । परंतु हमारा समाज धर्म से नियंत्रित है। उच्च वर्ग सामाजिक, धार्मिक कानुन-नियम बनाता है। लेकिन इन नियमों और कानुनों से धनिक वर्ग को छूट है।

'आदमी के हैं बनाये धर्म, नियम, आचार,

छूट है इनमें महाजन, धनिक, शासक को

नीति की जकडन गरीबों को, वही लाचार !

ढोंग प्रभु का रच रियायत है, उपासक को !''[३]

इसीलिए कवि कहता है, यह दोगला, सड-गल कर खोकला हुआ मजहब डुबा क्या, और बचा क्या ? दोनों बाते बेअसर है।

'धर्म बन गये रक्षक इन पापी काले बाजारवालों के,

मन्दिर में जप-जाप - 'अहिंसा', शोषण में शर्माती जोंके।

ऐसा यह मजहब जो अन्दर से सड-गल कर हुआ खोखला,

वह डुबा क्या, और बचा क्या ? वह बेअसर, फरेब, दोगला ...।''[४]

जिस समाज में व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं होती उस समाज के विधि-विधान व्यर्थ है । कवि ऐसे समाज की आकांक्षा रखता है जिरा में धर्म की अपेक्षा श्रम को महत्त्व दिया जाये। धर्म की निष्क्रियता को निष्कासित कर दिया जाए और व्यक्ति स्वयंम ही अपना ईश्वर बन जाए।

'हम भ्रम से उबरे, इस ही क्षण निज मर्यादाएँ पहिचाने,

सच्ची समता के सिद्धयर्थ समर हो !

हम श्रम से ऊबे न धर्म की निष्क्रियता को जानें,

हम हो स्वतः प्रभू, न पामर हों।''[५]

ऐसे समाज का स्वप्न पूरा करने के लिए हमें संघर्ष करना होगा। क्रान्ति के वीज अपने समाज में बोने होंगे -

'आज हवा में कुछ बागीपन, कुछ कुछ और नया ही रंग,

भूलो जीर्ण पुरातन सब कुछ, अब नवीन का कर लो संग ।''[६]

अपने इस बागीपन में कवि सब को शामिल करना चाहते हैं। प्रगतिवाद की ओर इशारा करते हुए कवि, चित्रकार, गायक पर समाज को प्रगति की ओर ले जाने का दायित्व सौंपते है –

'कवि साग्निक हो वाणी !

न बने निरी प्रचारक चेरी

शुध्द कला कल्याणी

XXXXXX

चित्रकार तव तूली !

बन जाये आगत युग की छबि

किन रंगों ने भूली ?''[७]

माचवे के प्रगतिवादी काव्य का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि उसमें समाज के दलित, पीडित और शोषित वर्ग के प्रति बुध्दि प्रेरित सतही करुणा या सहानुभूति का प्रदर्शन नहीं किया गया है जैसा कि सामान्यतः प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। माचवे के काव्य में वर्गचेतना के उस जुझारु संघर्षशील रूप को उभारने का अथक यत्न दिखाई पडता है, जो प्रगतिवादी चेतना का सारभूत तत्त्व है।

'आदमी के हैं बनाये ये नियम कानुन

स्वार्थ है इनमें छिपा है वर्ग का सूख मूल

सैकड़ों का जब कि मिलता है पसीना खून

सुघर सामाजिक व्यवस्था-रूप खिलते फूल ।''[८]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी मनुष्य स्वतंत्र नहीं हो पाया है। शासनकर्ता बदल गये है, पर सामान्य जन की हालत और भी खराब होती जा रही है। सही अर्थ में मनुष्य प्रगतिपथ पर तभी चल

सकता है जब वह स्वतंत्र हो । प्रगतिपथ पर जाने के लिए साधारण से साधारण जन की स्वतंत्रता आवश्यक है –

"हम धरती की मुक्ति चाहते, पूर्ण तुष्टि, हरियाली, रे !

नहीं चाहिए युक्ति-गर्जना, बात बदरिया काली, रे !

पेट भरा कब आश्वासन से, मीठे-मीठे शब्दों से ?

अघा गये अपने ही शासन से, अपनी ही चपतो से ।

अष्ट दिशा भडकी दावा । यह छीटें दो चार ? व्यर्थ है '

साधारण से साधारण जन की स्वतंत्रता' प्रथम शर्त है।"[९]

माचवे का प्रगतिवाद आत्मसंभव है, संस्कारी है, परम्परा निस्तृत है। वह उनकी जीवन व्यापी साधना का फल है, उनकी आत्मा का दर्शन है, मन-प्राण का आवेग है। इस प्रकार माचवे प्रगतिवाद के प्रवर्तक ही नहीं, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले कवि भी सिध्द होते है।

संदर्भ :

१. नयी कविता के सात अध्याय - नरेन्द्र देव वर्मा, पृ.२७
२. अनुक्षण-मुक्ति-दिवस- डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ.७४
३. अनुक्षण-धान और विधान - डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ.६९
४. अनुक्षण-दो सॉनेट-डॉ.प्रभाकर माचवे,पृ.८४
५. अनुक्षण-आश्वासन - डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ.६५
६. अनुक्षण-नयी हवा - डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ.६४
७. अनुक्षण-स्वर - डॉ. प्रभाकर माचवे, पृ. १०
८. प्रथम तारसप्तक - गेहूँ की सोच - सं. अज्ञेय, पृ. १२०
९. स्वप्नभंग - जुन ४८ से पहले - डॉ. प्रभाकर माचवे पृ.३१